वैक्रिय शरीर

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

शरीर धर्म कर्म का साधन है। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस् और कार्मण ये पांच शरीर होते हैं। देवता और नारकीय जीवों का वैक्रिय शरीर होता है। शरीर को छोटा करना, बड़ा करना, सूक्ष्म करना, स्थूल करना आदि क्रियाएं वैक्रिय शरीर से कि जा सकती है। चतुर्दश पूर्वों के ज्ञाता साधु आवश्यक कार्य या सत्य को जानने के लिए जो शरीर धारण करते हैं, वह आहारक शरीर है। जो शरीर आहार आदि को पचाने में सहायक है और जो तेजोमय है, वह तैजस कार्मण शरीर है। यह सभी संसारी जीवों का शरीर कहलाता है। यह शरीर तब तक रहता है, जब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो जाती। औदारिक शरीर जन्मसिद्ध होता है। वैक्रिय शरीर जन्मसिद्ध और लब्धि दोनों प्रकार का होता है। आहारक शरीर योगशक्ति से प्राप्त होता है।

प्रवाह रूप से आत्मा और शरीर का संबंध अनादि है, किन्तु व्यक्ति रूप से सादि। औदारिक वैक्रिय और आहारक शरीर के अंगोपांग होते हैं, शेष शरीरों के नहीं होते हैं। तैजस और कार्मण शरीर अत्यंत सूक्ष्म होते हैं। ये दो शरीर सभी संसारी जीवों के प्रवाह रूप से सदैव रहते हैं। औदारिक आदि शरीरों में परिवर्ततन होता रहता है। हमारा जीवन चार गतियों भ्रमण करता रहता है। नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव ये चार गतियां हैं। चौरासी लाख जीव योनियां हर गति में जीव ग्रहण करती हैं। जो जीव जैसा कर्म करता है, उसे वैसी गति प्राप्त होती है।

नारकीय का अर्थ है नरक गति। इसमें जीव क्यों जाता है? किन कर्मों के कारण नरक गति प्राप्त होती है? मनुष्य ही नरक गति में जाता है। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय जीव इसमें नहीं जाते। महापरिग्रह, हिंसात्मक कार्य करना, पंचेन्द्रिय जीवों का वध करना, मांसाहार का सेवन करना या इसी प्रकार के अन्य जघन्य कृत्य करने से जीव नरकायुष्य कार्मण शरीर प्रायोग्य बंध करता है। नरक योनि के जीव को अनेक यातनाएं भोगनी पड़ती है। नरक लोक पृथ्वी के

भीतर है। इसमें जन्म लेने वाले जीव का शरीर मोम की तरह होता है। नारकीय और देवगति वाले जीव वैक्रिय शरीरधारी होते हैं।

अभौतिक आत्म तत्व का कार्य एक उत्प्रेरक के समान है। जीवित प्राणी का जीवन काल आयुष्य कर्म के द्वारा निर्धारित किया जाता है। जीवित प्राणी में श्वासोच्छवास, संज्ञा, भाषा, कषाय, इन्द्रिय, लेष्या और वेदना विद्यमान रहते हैं। इन सभी का संचालन प्राणशक्ति के द्वारा होता है। जीवन भर ये संज्ञाएं इच्छाएं, भूख और प्यास, लालसा और संतोष प्रेम और घृणा भाव परिवर्तन और भय उत्पन्न करते हैं। वैक्रिय शरीर मोम की तरह होता है। यह सूक्ष्म से सूक्षम और बड़ा से बड़ा हो सकता है। वैक्रिय शरीर की अनेक विशेषताएं हैं। नरक गति और देव गति के जीव वैक्रिय शरीरधारी होते हैं।

नरक के जीव की बनावट सुराही की तरह होती है। सुराही ऊपर से पतली और नीचे गोलाकार होती है। सात नारकीय के जीव एक दूसरे को नोचते रहते हैं। इनमें हाड़–मांस नहीं होता। ये मायावी शरीर धारण करते हैं। देवलोक के प्राणियों का आयुष्य कर्म अधिक होता है। इनका जन्म सम्मूार्च्छनज होता है। इसमें स्त्री पुरुष का संयोग नहीं होता। वैक्रिय शरीर की आयु अधिक होती है। ये बहुत काल तक जीवित रहते हैं। कई तरह के रूप धारीण कर सकते हैं। सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण कर सकते हैं। लघु, गुरुत्व को धारण करने की क्षमता इस जीव में होती है। ये दिखलाई नहीं पड़ते। स्वर्ग लोक में देवता लोग और नरक लोक में नारकीय जीव रहते हैं। जो व्यक्ति पंचेन्द्रिय वध करता है, सबको दुःख देता है वह नरक गति में जाता है।

नारकीय जीव दुःख भोगते हैं। किसी भी प्राणी को कर्मों को भोगे बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही इस संसार में भोगना पड़ता है। वैक्रिय शरीर भिन्न–भिन्न रूप धारण कर सकता है। वैक्रिय शरीर को देखने के लिए अवधिज्ञान होना चाहिए। समान्य चक्षु से इन्हें हम नहीं देख सकते। वैक्रिय शरीर लम्बे समय तक रहता है। नरक गति और देव गति में वैक्रिय शरीर होता है। यह शरीर घटता–बढ़ता रहता है। इस प्रकार के जीव में रूप परिवर्तन की क्रिया होती है। यह नाम कर्म के अधीन होता है। आयुष्य पूरा होने पर वैक्रिय शरीर छूटता है। फटने के बाद यह सृष्टि में विलीन हो जाता है।

आत्मा और शरीर के प्रत्यय को जानना बहुत आवश्यक है। आत्मा शाश्वत् और चिदानन्द है। आत्मा में कोई विकार नहीं आता। विकार शरीर का धर्म है। शरीर परिवर्तनशील है। जो जैसा कर्म करता है उसे फल भोगने के लिए वैसी ही गति मिलती है। वैक्रिय शरीर भी कर्मों का परिणाम है। मानव शरीर पाकर के सद्कर्म करना चाहिए। सद्कर्म करने से जड़ और चेतन अलग–अलग हो जाते हैं। जड़ और चेतन का अलग–अलग होना ही मुक्ति है। जिसके लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। जो जीव शास्त्रों का अध्ययन करके और गुरु के सानिध्य में रहकर सद्ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसका ज्ञान चक्षु उद्घाटित हो जाता है। ऐसे जीव को कर्मबन्ध नहीं होता। कर्म ही भव–भवान्तर में भ्रमण कराता है। इसलिए जीव को ऐसा कर्म करना चाहिए कि वह बन्धन में न फंसे।